# (सत्तर श्लोकी-मूल)

## प्राचीन श्रीमद्भगवद्गीता

### मूल लेखक

कृष्ण द्वैपायन महर्षि वेदव्यास

### समीक्षक एवं शोधकर्ता

मंगलानन्दपुरी सन्यासी

### सम्पादक

लाजपत राय अग्रवाल

**(वैदिक मिशनरी)**

# आभाराभिव्यक्ति

## लाजपत राय अग्रवाल (वैदिक मिशनरी)

मेरी चिरकाल से इच्छा थी कि मूल गीता के दर्शन किये जायें, परन्तु काफी प्रयास के बाद भी मुझे नहीं मिली। ___ मैंने अनेकों विद्वानों के मुख से सुना था कि कोई सत्तर श्लोकी गीता है, जिसे "बालीद्वीप" से "श्री मंगलानन्द सन्यासी" जी ने उपलब्ध करा कर प्रकाशित कराया था, जिसका प्रकाशन सन् १९२५ ई० के आसपास हुआ था। वही मूल गीता है, उसके बाद तो कालान्तर में प्रक्षेपक होते-होते यह सात सौ श्लोकों तक पहुंच गई है।

इस विषय पर अनेकों विद्वानों के ग्रन्थ भी पढ़ने व देखने में आये जैसे गीता परिशीलन, गीता विमर्श, गीता विवेचन, गीता पर ४२ प्रश्न आदि-आदि जिनका अध्ययन करने पर इस मूल गीता को देखने की हूँ।इच्छा और भी ज्यादा हो गयी।

अन्ततः मैं हमेशा की भांति इस बार भी फरवरी सन् २००७ई० में टकारा (ऋषि के जन्म स्थान) में वहां के अन्तर्राष्ट्रीय उपदेशक विद्यालय के वार्षिक उत्सव एवं ऋषि बोधोत्सव पर साहित्य प्रचार के लिए गया हुआ था, जहां **सम्मानीय श्री आचार्य विद्यादेव जी का** मेरे साथ अतीव स्नेह है, उसका कारण है कि वह मेरे द्वारा मिशनरी भाव से किये जा रहे कार्यों से अत्याधिक प्रभावित हैं। यह मेरा सौभाग्य है। __ वहां जाने का सबसे बड़ा लाभ मुझे यह होता है कि सारे देश विदेश के आर्य सज्जन जो मुझसे प्रेम-प्रीती रखते हैं, उनसे

मिलना हो जाता है, वैसे मैं कितना भी धन खर्च करूँ तथा कितना भी प्रयास करूँ एक साथ उन सभी का मिलना नितान्त मुश्किल है।वहां मुझे मेरे प्रिय भक्त एवं साथी “श्री अल्पेश जी आर्य, ५३१/५१ गुजरात हाऊ**सिंग बोर्ड, के०एस०ई०जेड० गांधीधाम (कच्छ) गुजरात**" से मिलना हुआ। आप बड़े ही स्वाध्यायशील एवं पुराने ग्रन्थों के बड़े ही खोजी हैं। वार्तालाप के दौरान आपने मुझे इस पुस्तक के बारे में बताया, और आश्वासन दिया कि पुनः मुद्रण हेतु मैं आपको इसकी प्रति उपलब्ध करा दूंगा!

श्री अल्पेश शास्त्री जी ने गांधीधाम जाकर मुझे इसकी फोटो कापी भिजवा दी। जिसे देखकर व अध्ययन करने के बाद मैंने अन्त:करण से उनका धन्यवाद किया और तुरन्त इसका सम्पादन कर पुनर्मुद्रण हेतु प्रैस में दे दिया।

अच्छे और निस्वार्थ भाव से कार्य करने वालों की प्रशंसा होनी ही चाहिये, अत: "श्री अल्पेश शास्त्री जी बधाई के पात्र हैं," मैं उनका पुनः हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

**“लाजपत राय अग्रवाल"**

**(वैदिक मिशनरी)**

# -यह 70 श्लोकी गीता हमें कहाँ से मिली -

अब मैं पाठकों कोयह बतलाता हूं कि यह ७० श्लोकी गीता कहां से और किस प्रकार प्राप्त हुई ?

इसको मैंने बाँकीपुर के साप्ताहिक “पाटलिपुत्र" श्रावण शुक्ला २, शनिवार संवत् १९७१ विक्रमी में पढ़ा, फिर वहां जिस लेख के आधार पर छपा था, उसको भी देखा जो सन् १९१४ ई० के जुलाई मास के “माडर्न रिव्यू" कलकत्ता (Modern Review)में पृष्ठ ३२ से ३८ तक प्रकाशित हु है। इसके लेखक “डॉक्टर नरहर गोपाल सर देसाई" महाशय है। लेख का शीर्षक है:The Bhagavad Gita from the Island of Bali

__अर्थात- बाली द्वीप से प्राप्त भगवद्गीता। इस लेख का सारांश निम्न प्रकार है:बाली नामक एक छोटा-सा द्वीप जावा द्वीप के पास है। जावा टापू में हिन्दू बस्ती थी, राज्य भी हिन्दुओं का था जिसे सन् १४७८ ई० में अरब* वालों (मुसलमान जाति) ने नष्ट कर डाला। वहां के हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया गया जिनमें मुसलमान होने के बावजूद अब मेरे द्वारा लिखित पुस्तक- "जिहाद के नाम पर दुनिया को कैसे मुसलमान बनाया गया ?" इस विषय पर पठनीय पुस्तक है।

-“लाजपत राय अग्रवाल"

(२८)

जावा में कुछ बौद्ध भी हैं पर अब हिन्दू नहीं हैं।यह अति प्राचीन देश है। "वाल्मीकि रामायण" में इसका वर्णन "यव द्वीप" के नाम से आया है। जावा द्वीप हिन्दू सभ्यता का केन्द्र था और बड़े-बड़े विद्वान, हुनरमन्द, शस्त्रधारी, शूरवीर तथा सभी प्रकार के लोग भी वहां पहुंचते थे।

बौद्ध लोग भी पहुँचे, और भारत से ब्राह्मण लोग संस्कृत की पुस्तके लेकर वहां पहुंचे थे। डॉक्टर देसाई जी कहते हैं कि मैं “पेनांग" देश में नौकरी पर था। वहां एक पुस्तक पढ़ते हुए अनायास मेरी दृष्टि एक शब्द “बाली द्वीप में हिन्दू रामायण तथा हिन्दुओं के ४ वर्ण" पर पड़ी।

निस्सेन्दह डॉक्टर देसाई जी के हृदय में स्वभावतः यह उत्कण्ठा उत्पन्न हुई कि आखिर यह “बाली" द्वीप कहाँ है? इसकी खोज करनी चाहिए।

नक्शा (ऐट्लस) को ध्यानपूर्वक देखकर यह ज्ञात किया कि जावा

देखो प्रमाण-

**यत्नवंतो यव द्वीपं सप्त राज्योपशोभितम्।**

**सुवर्ण-रूपकं दीपं सुवर्ण कर मण्डितम्॥**(वाल्मीकि रामायण किष्किधा काण्ड, ४०वा सर्ग ३०वां श्लोक)

**अर्थ-** और तुम बड़े यत्न के साथ सप्तराज-सुशोभित “यव द्वीप" में जाना और सुवर्णकारी पुष्पों से शोभित रूपक द्वीप में ढूंढना यह तुम्हारा कर्तव्य है। ।।३० ।।

**नोट-** “यव” का “जव" या "जावा" बन गया है और इन्हीं श्लोकों में जो अन्य सुवर्ण-रूप द्वीप कहा गया है वह आजकल “सुमात्रा टापू" कहलाता है।

सुग्रीव ने सीता जी की खोज निमित्त जिन्हें भेजा उन्हें, बतलाया कि किन-किन देशों में वे जायें इसी बीच का यह श्लोक है।

दीप के पास यह "बाली टापू" विद्यमान है। निदान ! किसी न किसी प्रकार आपने मई सन् १९१२ ई०में बाली द्वीप को प्रस्थान किया और (Surbaja) ठहरे, क्योंकि वहीं से बाली द्वीप को जहाज जाते हैं। डॉक्टर देसाई जी ने बहुत कुछ चाहा कि इस सुर्बजा में बाली के हिन्दओं का कुछ हाल ज्ञात हो, परन्तु कुछ भी पता न लगा, लेकिन अन्त में एक भारतीय मुसलमान जो बोहरा जाति वाला था वह मिल गया, जो बाली द्वीप की राजधानी बूलेलांग (Bule Lang) में रहता था और यहां व्यापारी के रूप में माल खरीदने आया था। उसने बतलाया कि बाली में पढ़े-लिखे ब्राह्मण लोग हैं जो “पण्डा" कहलाते हैं और उस द्वीप के एक बन्दरगाह अर्थात् “करंग आसेम" (Karang Assem) में एक हिन्दू राजा भी रहता है।

यह भेद पाते ही डॉक्टर देसाई महाशय इसी बन्दरगाह अर्थात् करंग आसेम वाले जहाज पर जा सवार हुए। दो दिनों की समुद्रीय यात्रा करने के पश्चात् वहां पहुंच गये।

रात को ९ बजे जहाज बन्दरगाह पर पहुंचा। अतः बिस्तरा-सामान लिये हुए उस समय तीन मील जाना परदेशी कुली के साथ कितना कष्ट-साध्य था?

अस्तु, प्रात:काल डॉक्टर जी उस गांव में इधर-उधर घूमने लगे कि पण्डा लोगों तथा राजा जी के दर्शन करें। यह सुनकर कि राजा जी ११ बजे के पश्चात् लोगों से मुलाकात करते हैं।, डॉक्टर जी अपने मुसलमानGuide( पथ-प्रदर्शक) के साथ किसी पण्डा के मकान की तलाश में निकल पड़े। . मार्ग में यह मुसलमान पथ-प्रदर्शक वहाँ की जनता को यह सुझा रहा था कि तुम्हारे देश का यह ब्राह्मण आया हुआ है। जिसे वे लोग आश्चर्य की दृष्टि से देखते थे।

डॉक्टर जी दो तीन पण्डाओं के घरों पर पहुंचे, परन्तु वहाँ जो संस्कृत पुस्तकें हैं वे देवनागरी अक्षरों में नहीं हैं, कवि-भाषा के अक्षरों में लिखी हुई हैं। वहां से निराश होकर डॉक्टर देसाई जी उस राजा के महल पर पहुंचे। राजा जी भारत के ब्राह्मण को आया देखकर दंग रह गये।

बहुतेरी बातें भारत के सम्बन्ध में पूछी, आतिथ्य-निमित्त गाय का दूध मंगाया जो वहां दुष्प्राप्य है, क्योंकि उस देश के लोग दूध सेवन नहीं करते, यद्यपि गायें वहां बहुत हैं।

डॉक्टर देसाई वहां तीन दिन ठहरे रहे और यह ज्ञात किया कि पूर्व काल में चाहे अनेकों संस्कृत ग्रन्थ वहां रहे हों, पर अब नहीं हैं। हां ! धार्मिक गाथाओं को उन लोगों ने बाली द्वीप की भाषा में लिख रखा है, जिनको वे पढ़ा व सुना करते हैं।

हमारे देसाई जी निराश होकर केवल जहाज की प्रतीक्षा में ठहरे थे कि इतने में बूढे राजा के नवयुवक पुत्र ने इनको बुला भेजा और अन्य बातों के सिलसिले में यह भी पूछा कि क्या हिन्दुस्तान में इस समय महाभारत के सारे पर्व मिल सकते हैं? उत्तर "हाँ" में पाने पर इस राजपुत्र ने एक ब्राह्मण को आज्ञा दी कि पुस्तकालय में से भीष्म पर्व निकाल लावे। यह लकड़ी के सन्दूकों में बड़ी सफाई के साथ सुरक्षित है।

ये ताड़ के पत्रों पर लिखे रखे हैं, १४ इंच लम्बे और ढाई इंच चौड़े पत्रे हैं, बीच में छेद करके डोरे से सबको नत्थी कर दिया गया है। इन इसी प्रकार बंगला वालों ने बंगला अक्षरों में तथा मद्रास (चेन्नई) वालों ने अपने तमिल, तेलुगु आदि अक्षरों में संस्कृत पुस्तकों को लिख रखा है।

ऐसे ही ताड़-पत्रों पर प्राचीन संस्कृत पुस्तकें भारत के सब भागों में सुरक्षित हैं।

(३१) पत्रों पर बाली द्वीप की कवि-भाषा में सुई से कोच-कोच कर अक्षर अंकित कर दिये गये हैं जो बहुत स्पष्ट और शुद्ध हैं।

अब भीष्म पर्व पढ़ा जाने लगा। उन बाली द्वीप निवासी ब्राह्मण का संस्कत श्लोकों का उच्चारण ऐसा अद्भुत था कि डॉक्टर देसाई बडी मश्किल से यह भाप सके कि वह संस्कृत है।

अब डॉक्टर जी के मन में ख्याल आया कि भीष्म पर्व में ही तो भगवदगीता मौजूद है! अच्छा उसे ही निकलवाना चाहिए। पर वहां वाले भगवद्गीता नाम से सर्वथा अपरिचित थे, निदान बहुत देर तक उलट-पलट करने के पश्चात् डॉक्टर देसाई ने भगवद्गीता के कुछ श्लोकों को ढूंढ निकाला। वहां वाले संस्कृत मात्र को श्लोक कहते हैं। डॉक्टर देसाई यह देखकर दंग रह गये कि उस बाली द्वीप के भीष्म पर्व में भगवदगीता १८ अध्याय के स्थान में सिर्फ एक ही अध्याय है. जो २३वें से ४०वें पत्र तक है। उस द्वीप के सबसे बड़े विद्वान "पण्डित पडंडा वयान् पिडाड" (Padanda wayan Pidad) के द्वारा पढ़वाकर उन गीता के श्लोकों की नकल “डॉक्टर देसाई" ने कर ली।

श्री डॉक्टर देसाई अपने उसी लेख में यह प्रकट करते हैं कि उस बालीद्वीप वाली गीता में निम्न विशेषतायें हैं-

1. यह गीता “धर्म क्षेत्रे" के स्थान में “दृष्ट्वेवं स्वजनं" श्लोक से आरम्भ होती है।
2. इसमें अलग-अलग अध्याय नहीं हैं बल्कि सब श्लोक एकही अध्याय में मौजूद हैं।
3. ७०० श्लोक नहीं हैं।
4. कुछ श्लोकों का तात्पर्य वहां की कवि-भाषा में अंकित है।

5. हमारे (१८ अध्यायों वाली) भगवद्गीता के सब अध्यायों के श्लोक इसमें नहीं हैं।
6. डॉक्टर देसाई ने इस गीता में "भारतीय गीता" के अध्यायों और श्लोकों की संख्या जांच कर (70)अंकित कर दी है।
7. जिस प्रकार हम लोग गीता आदि का पाठ किया करते हैं, इसी प्रकार बाली द्वीप में एक पुस्तक 'कामन्दक नीतिसार' का बड़ा प्रचार है।
8. बालीद्वीप वाले हिन्दू यह कहते थे कि जब सन् १४७८ ई० में जावा द्वीप पर मुसलमानी राज् स्थापित हुआ, उस समय जावा से एक ब्राह्मण वाहुराहु (Wahu Rahu)अपने धर्म की रक्षा के लिए कुछ धर्मिक पुस्तकें साथ लेकर बालीद्वीप में भाग आया था।

**“सम्पादक**

## -गीता के सम्बन्ध में व्याप्त भ्रान्तिया-

आज सामान्य तौर पर गीता का स्थान वेदों से भी ऊपर हो गया है। उसका एक मात्र कारण यह है कि वेदों का पठन-पाठन हर व्यक्ति के बस की बात नहीं है, उन्हें समझना तो बहुत दूर की बात हाँ ! गीता एक ऐसा ग्रन्थ जरूर है जिसे साधारण पढ़ा लिखा व्यक्ति भी अच्छी तरह से पढ़ लेता है, पौराणिक जगत के अन्दर तो गीता के अनेकों संस्करण केवल हिन्दी में ही धारा प्रवाह रूप में छापे हुए हैं, जिनकी बहुधा लोग कथा करते कराते और सुनते-सुनाते हैं।

जहाँ हमारे अन्य धर्मग्रन्थों में मिलावटों की भरमार है, वहाँ गीता भी उससे अछूती नहीं रही। __ परिणामस्वरूप उसमें अवतारवाद, देवतावाद, स्वर्ग-नरक, वर्ण व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में जो अवैदिक भ्रान्त धारणायें हैं उन सभी का प्रतिपादन भी मौजूद है।

एक सामान्य व्यक्ति अपनी साधारण बुद्धि के अनुसार गीता पर आँख मीच कर विश्वास करता है, क्योंकि वह उसे श्री कृष्ण जी महाराज का सत्यवचन मानता हुआ स्वीकार करता है।

जिसमें इन अवैदिक मान्यताओं रूपी जहर को मिठाई में लपेटकर प्रस्तुत किया गया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि गीता की शिक्षाएं आज भी सर्वोपरि हैं, मनुष्य मात्र की उन्नति में सहयोगी हैं, परन्तु उसमें जो अवैदिक मान्यताओं का मिश्रण प्रक्षेपक रूप में मौजूद है उसका प्रक्षालन होना नितान्त आवश्यक है।

गीता पर हर भाषा में, हर सम्प्रदाय के विद्वानों द्वारा भाष्य किये हुए आपको मिल जायेंगे। परन्तु सभी ने एक दूसरे की देखा-देखी, प्रत्यालेपन से ही काम लिया है।

हाँ! आर्यजगत के मूर्धन्य विद्वान खण्डन-मण्डनात्मक साहित्य के प्रणेता- "डा० श्री राम आर्य" (कासगंज निवासी) जी ने अवश्य गीता पर शोधात्मक दृष्टि से गीता के रहस्यमय स्वरूप का दिग्दर्शन कराया है जो "गीता विवेचन" के नाम से उपलब्ध है।

यह ग्रन्थ भी हमारे द्वारा ही "अमर स्वामी प्रकाशन विभाग" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ है। आप उसका अध्ययन करें तो आपकी अनेकों भ्रान्तियों का निवारण स्वतः ही हो जायेगा।

गीता में व्याप्त भ्रान्तियों की भरमार है। जहाँ सात सौ श्लोकों में छः सौ तीस श्लोक प्रक्षेप रूप में मौजूद हों भला वहाँ भ्रान्तियाँ क्यों न होंगी? आप उन बकाया छः सौ तीस श्लोकों को तर्क की कसौटी पर कस कर पढ़िये तो आपको मिलावट साफ नजर आ जायेगी।

गीता का स्वरूप भी ठीक हमारे अन्य सम्प्रदायों ने ठीक वैसा ही बना दिया, जैसे कि इनके मन्दिरों का है। . देखिये आप किसी भी पौराणिक मन्दिर में चले जाइये, बल्कि जितने बड़े और विख्यात मन्दिर में आप जायेंगे वहाँ यह बात कुछ ज्यादा ही आपको देखने में आयेगी। वह बात क्या है? आप देखिये,

गीता का अनुवाद फारसी भाषा में भी "दिल मुहम्मद" द्वारा किया हुआ मिलता है जो हमारे यहाँ प्रकाशन विभाग में मौजूद है।

इनके देवी-देवताओं की मूर्तियाँ जिनका साज-श्रृंगार इस कदर किया जाता है कि मूर्ति का अस्तित्व ही लुप्त हो जाता है।
वह काफी ध्यान से देखने पर भी नजर नहीं आती और यह अन्ध श्रद्धालु भक्त वहां मत्था टेक कर हाथ जोड़कर चला आता है।
जब कोई उससे मन्दिर के बाहर आकर पूछता है कि आपने दर्शन कर लिये, वहाँ क्या देखा? तो उसका सीधा सा उत्तर होता है कि उस पर इतना अंगार लदा था कि मूर्ति का चेहरा तो दिखाई ही नहीं दिया और पण्डे-पुजारी ने आगे को चलने के लिये धक्का दे दिया। . | बस !
यही हाल गीता के साथ हुआ है, गीता पर कालान्तर में इतना श्रृंगार लादा गया है कि उसका मूल हिस्सा भी हमें आज देखना दूभर हो गया है। __ अत: जब आप इस प्राचीन गीता का अध्ययन करेंगे तो मैं समझता हूँ कि आप गीता में व्याप्त भ्रान्तियों से अवश्य ही परिचित हो जायेंगे।
जब इस मूल गीता में सभी विषयों का वर्णन मौजूद है तो फिर इन सत्तर श्लोकों पर बाकी छ: सौ तीस श्लोकों का आवरण क्यों चढ़ाया गया है?
हमारा उद्देश्य गीता से किसी को विमुख करना नहीं है। अपितु उसमें जो-जो बातें वेदानुकूल हैं, वह मानने योग्य हैं। बाकी त्याज्य हैं।

**"लाजपत राय अग्रवाल"**

**(वैदिक मिशनरी)**

# -गीता हमें क्या शिक्षा देती है?-

भाईयों । अब सवाल पैदा होता है कि गीता हमें क्या शिक्षा देती है? उस पर हम कुछ प्रकाश डालते हैं।

गीता हमें कर्म करने का उपदेश देती है।कर्मशील होने का

1. उपदेश देती है वह निकम्मा निटठल्ला, अकर्मण्य होने का निषेध करती है।
2. गीता हमें अमरता का ज्ञान कराती है, आत्मा और परमात्मा का बोध कराती है।
3. गीता हमें धर्म, अधर्म, वर्ण व्यवस्था का ज्ञान कराती है।
4. गीता हमें शूरवीर, निर्भीक और जीवन जीने की कला का उपदेश देती है।
5. गीता हमें ज्ञान, कर्म, उपासना और वैराग्य का वास्तविक बोध कराती है तथा ईश्वर जीव और प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्धों का वास्तविक ज्ञान कराती है।
6. गीता हमें लोक-परलोक, सत्य-असत्य तथा अपने-पराये का बोध कराती है।
7. गीता हमें काम, क्रोध और मोह की वास्तविक स्थिति का बोध कराती है।
8. गीता हमें वैरागी बन कर घूमने का उपदेश नहीं देती जैसा कि साधु समाज में भ्रान्त धारणा है।
9. गीता हमें आर्य-अनार्य के कर्तव्यों से परिचित कराती है।

10. गीता हमें स्वर्ग-नरक, यश-अपयश का रास्ता समझाती है।



**योगीराज श्रीकृष्ण**

## -प्राचीन श्रीमद्भगवद्गीता 700 के स्थान में 70 श्लोक)-

यह ७० श्लोकी गीता "दृष्टवेमं स्वजनं...." वाले श्लोक से आरम्भ होती है जिसका पहला श्लोक निम्न प्रकार है-

**दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।**
**नच श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजन माहवे।**
**न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च॥१॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १ श्लोक २८, ३१, ३२)

अर्थ-( अर्जुन ने कहा ) हे कृष्ण ! अपने निज लोगों को युद्ध की इच्छा से यहाँ पर एकत्र हुए देखकर (मैं दुःखी हो रहा हूं)। (क्योंकि) इन स्वजनों को मार कर मैं अपना कल्याण नहीं देखता। हे कृष्ण ! इस प्रकार की विजय, राज्य और सुख की मुझे तनिक भी आकांक्षा नहीं है।

**यदि माम प्रतीकारमशस्त्र शस्त्र-पाणयः।**
**धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥२॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १ श्लोक ४६)

अर्थ- बल्कि अगर ऐसा हो कि मैं स्वयं न तो बदला लेने वाला बनूँ और न शास्त्रों को हाथ में धारण करूँ, इस दशा में मुझको धृतराष्ट्र की सन्तानें (दुर्योधनादि) मार भी डालें, तो
अवश्य मेरा कल्याण हो जाये।

**क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।**

**क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्क्त्वोत्तिष्ठ परं तप ॥३॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ३)

संगति--अर्जुन की उक्त बातें सुनकर श्रीकृष्ण जी महाराज ने उत्तर दिया-

अर्थ-हे पार्थ ! तू ऐसा नामर्द मत बन, तुझे यह शोभा नहीं देता । अरे शत्रुओं को ताप देने वाले ! अन्तःकरण की इस क्षुद्र? दुर्बलता को छोड़कर (युद्ध के लिए) खड़ा हो जा ।

**अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।**

**गतासूनगतासूश्च नानुशाचान्त पण्डिताः॥४॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ११

वह अन्तःकरण की दुर्बलता क्या है? यह बतलाते हैं

अर्थ--और हे अर्जुन ! जिनके बारे में शोक नहीं करना चाहिए, तू उन्हीं के लिए शोक कर रहा है। तू तो ज्ञानियों की जैसी बातें कर रहा है। (पर ज्ञानी नहीं है, क्योंकि) वे पण्डित लोग तो किसी के प्राण जाने, न जाने का शोक नहीं किया करते।

**देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।**

**तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥५॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक १३)

शोक क्यों नहीं करते? यह बतलाते हैं।

अर्थ-जिस तरह दूसरी देह से इस देह में लड़कपन, जवानी,

अर्थ- ये देह (असत होने से) अन्त वाले हैं और शरीर के मालिक (जीवात्माएं) सदा (सत् होने से) नित्य (अन्त न होने वाले) कहे गये हैं।

हे भारत! वह (जीवात्मा) तो अविनाशी और अप्रमेय (अचिन्त्य) है, इसलिए (तू उसके मरने या मारे जाने की फिक्र छोड़कर) युद्ध में डट जा।

❖ (आवागमन पर यहाँ दृष्टान्त दिया गया है। जैसे लड़के का शरीर जवान हो जाने पर यद्यपि शरीर का आकार बदल जाता है, पर जीवात्मा वही बना रहता है, इसी प्रकार दूसरा जन्म लेने पर भी यद्यपि शरीर बदल जाता है पर जीवात्मा वही बना रहता है।इसपर श्रुति यह है-

**योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः॥**
**स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथा कर्म यथा श्रुतम्॥७॥**(कठ उपनिषद् ५-७)

**य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।**
**उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥८॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक १९)

<u>अर्थ-</u>(क्योंकि) जो कोई इस (जीवात्मा) को मारने वाला मानता है और जो मारा जाने वाला मानता है, वे दोनों असिलयत को नहीं जानते (कारण यह कि) वह न तो मरता है और न मारा जा सकता है।

❖ ( इस पर यह श्रुति है-

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥१८॥(कठोपनिषद २-१८)

**स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितु मर्हसि।**
**धाद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते॥९॥**

**(वर्तमान भगव**द्गीता अध्याय २ श्लोक ३१)

संगति-अच्छा अगर जीवात्मा के अमर होने की बात पर ध्यान न भी दिया जाये, तो भी अर्जुन को युद्ध से इन्कारी न बनना चाहिए था। क्यों? सुनोः

अर्थ- अपने धर्म का ख्याल करके भी तुझे (युद्ध से) नहीं डिगना चाहिये, (क्योंकि ) क्षत्रिय के लिए तो युद्ध रूपी धर्म से बढ़कर श्रेय (कल्याणकारी) और दूसरा कोई कर्म ही नहीं है।

**हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्ग जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।**
**तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥१०॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ३७)

संगति-वह कल्याणकारी कैसे है? सुनो

अर्थ-अगर तू युद्ध में मारा जायेगा तो स्वर्ग को पायेगा और अगर जीत लेगा तो पृथ्वी का राज्य भोगेगा अर्थात दोनों हाथ लड्डू हैं इसलिए हे कौन्तेय ! उठो, युद्ध के लिए निश्चय करके खड़े हो जाओ।

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**
**मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ११॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ४७)

संगति-अगर अर्जुन यह कहे कि मैं युद्ध में मार-काट रूपी निर्दयता का अनुचित व्यवहार क्यों करूँ? तो भगवान उत्तर देते हैं

अर्थ- तेरा अधिकार कर्म करने ही में है। किन्तु फल भोगने में नहीं है। *कर्मों के फलों का कारण मत* बनो (अमुक फल मिले यह हेतु मन में रख कर काम करने वाले मत बनो) और तेरा संग

अकर्म में न हो अर्थात कर्म करना छोड़ भी मत देना।

- (इस पर मनुस्मृति का प्रमाण देखो- अध्याय ७ श्लोक ९४ तथा ९५,
- यहां निष्काम कर्म का उपदेश है कि काम तो करो परन्तु उसके फल की इच्छा मत रक्खो। कर्मों को केवल अपना कर्त्तव्य मान कर करो।)अर्थात- श्री कृष्ण जी

अर्जुन से कहते हैं कि युद्ध करना तेरा कर्तव्य कर्म है, इसीलिए उसे करना ही चाहिए।

**सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।**
**श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।**
**समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥१२॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ४८ दे ५३)

संगति- उक्त प्रकार के निष्काम कर्म करने में सुगमता कैसे हो? सुनो

<u>अर्थ-</u> सफलता- असफलता में समान रहना (सफलता होने पर खुशी के मारे फूल कर कुप्पा न बन जाना और असफलता पर दुःख से व्याकुल न होना) चाहिये। ऐसी समता ही "योग"1हैं,(नाना प्रकार के) वेद-वाक्यों. से दुविधा में पड़ी हुई तेरी बुद्धि जब समाधि2 वृत्ति में स्थिर और निश्चल3 हो जायेगी, तब तू योग को प्राप्त कर लेगा।

1. "योग" शब्द का अर्थ है मिलना और भावार्थ में जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिलाप होने को "योग" कहते हैं। परमात्मा के साथ योग कब होगा? यहाँ श्री कृष्ण जी बतलाते हैं कि जब हम सफलता-असफलता को बराबर समझने लग जायेंगे तभी योगी अर्थात् ईश्वर-भक्त बन सकेंगे।
2. जिसका रूप ध्यान किया जाये उसके स्वरूप में कायम और अपने रूप को भूल जाना, "समाधि" कहलाता है।

**प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।**
**आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥१३॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ५५)

<u>संगति-</u>अब समाधि में अचल होने वाले का लक्षण बतलाते हैं

अर्थ-हे पार्थ ! जब वह (योगी मन में आने वाली) सारी कामनाओं को सारी कामनाओं को छोड़ देता है और *आत्मा से आत्मा में सन्तुष्ट* रहता है,

तब वह "स्थित-प्रज्ञ" अर्थात् अचल बुद्धिवाला कहलाता है।

- आत्मा से आत्मा में संतुष्ट रहना यह है कि जीवात्मा अपने प्रभु परमात्मा ही के चिन्तन में लीन रहे। "आत्मा" शब्द वेदान्त ग्रन्थों में जीवात्मा तथा परमात्मा दोनों के लिए आता है। इस पर यह श्रुति है-
- प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वन्भवतेनातिवादी।
- आत्म क्रीड आत्म रतिः क्रियावानेषुब्रह्म विदां वरिष्ठः॥ (मुण्डक उपनिषद ३-४)

**दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।**
**वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥१४॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ५६ )

अर्थ-जिसके मन को दुःख में खेद नहीं होता और न सुख में आसक्ति होती है, जिसने प्रीति, भय और क्रोध को छोड़ दिया है, वह मुनि स्थित-धी: अचल बुद्धि वाला कहलाता है।

**विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।**
**रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥१५॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ५९)

संगति-प्रश्न- यह जो ऊपर कहा है कि सुख में आसक्त न होना अचल-बुद्धि वाले का लक्षण है, तो यतः गरीब निर्धन लोग भी सुखों से दूर रहा करते हैं, इसलिये क्या उनको भी अचल बुद्धिवाला मान लिया जाये? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि

अर्थ-निराहारी मनुष्य (जिसे खान, पान या अन्य सुख सामग्री नहीं मिलती) के विषय-भोग तो छूट जाते हैं, परन्तु उसकी वासना नहीं छूटती (मन में उन अप्राप्त विषयों का मनन होता रहता है।) अलबत्ता परब्रह्म परमात्मा को देख लेने2 पर वासनाएं भी निवृत्त हो जाती हैं।

❖ देखने से तात्पर्य ज्ञान दृष्टि से देखना अर्थात् साक्षात्कार कर लेना अभीष्ट है।

**या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।**
**यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥१६॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ६९)

संगति-ऐसे परमात्मा का दर्शन कर लेने वालों की दशा किस प्रकार की होती है? सुनो

अर्थ-सर्वसाधारण लोगों की जो रात होती है उसमें वे संयमी(परमात्मा के दर्शन करने वाले योगी) लोग जागते हैं और जिस अवस्था में वे दुनियादार लोग जागते रहते हैं वह उन योगियों की रात्रि है।

❖ यहां रात-दिन आलंकारिक भाषा में आये हैं। अभिप्राय यह है कि योगियों की दशा सांसारिक लोगों से सर्वथा उल्टी रहती है। ये दुनियादार लोग तो विषय भोगों में लिप्त रहना ही मात्र परम उद्देश्य मान बैठे हैं, परन्तु वे ब्रह्मज्ञानी इन दुनियावी सुखों पर लात मार कर आगे बढ़ रहे हैं; अत: मानो सांसारिक भोगों में फंसना उनकी रात्रि है और परमार्थ चिन्तन ही उनका दिन है।

**देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।**
**परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥१७॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ३ श्लोक ११)

संगति-जो लोग ऊपरी श्लोकों के अनुसार अभी योगी नहीं बन सकते, वे कर्मकाण्डी ही बने रहें, यह उपेदश यहां करते हैं

अर्थ-देवताओं को (अपने यज्ञ कर्मों से) प्रसन्न करोगे तो वे खुश होकर तुम्हारा कल्याण करेंगे। इस प्रकार एक-दूसरे को प्रसन्न करते हुए परम कल्याण को प्राप्त कर लोगे।

**यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।**
**भुञ्जते ते त्वधं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥१८॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ३ श्लोक १३)

संगति- यज्ञ ही से देवता प्रसन्न हुआ करते हैं, इसलिये यज्ञ की महिमा सुनो

अर्थ-*यज्ञ* से बचे हुए पदार्थों को खाने वाला सन्त सब पापों से छूट जाता है। परन्तु जो लोग केवल अपने लिये ही भोजन पकाते हैं वे मानों अपने पापों को खा रहे हैं।

मनस्मृति तथा शतपथ ब्राह्मण में पाच महायज्ञ प्रतिदिन करने का विधान है-

- संध्या करके
- हवन करके
- बलिवैश्व द्वारा कुत्ते आदि का भाग देकर
- पितरों को खिलाकर
- अतिथि अभ्यागतों को भोजन करा लेने के पश्चात्

गृहस्थी स्वयं भोजन करे, ऐसा न करने वाले पापी होंगे।

श्री कृष्ण जी महाराज अर्जुन को आदेश देते हैं कि युद्ध करके राज्य प्राप्त कर ले तो खूब दान, पुण्य, यज्ञ, हवनादि कर सकेगा।

**श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।**
**स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥१९॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ३ श्लोक ३५)

संगति- यज्ञों का अनुष्ठान धर्मात्मा लोग ही कर सकते हैं, इसलिए धर्म का विवरण सुनो

अर्थ-अपना *धर्म* खराब, प्रतीत होता हो, तो भी दूसरे के *धर्म* को बहुत उत्तम प्रकार पालन करने से भी वह श्रेष्ठ ही है। अपने धर्म में मरना भला है, किन्तु दूसरे का *धर्म* अपने को भयदायक ही है।

- "यहां वर्णाश्रम धर्म से अभिप्राय है। ब्राह्मण का धर्म पढ़ना-पढ़ाना आदि है तथा क्षत्रिय का दुष्टों को मार कर धर्मात्माओं की रक्षा करना। यहां अर्जुन को कहा गया है कि तू क्षत्रिय है, युद्ध करना तेरा धर्म है, उसे छोड़ कर जो तू भागा जाता है यह तेरी भारी भूल है।_अरे क्षात्र धर्म कितना ही खराब क्यों न हो, पर वह तेरे लिये तो अच्छा ही है।"
- कई लोग "धर्म" से मत-मतान्तरों तथा मजहबों का तात्पर्य लेते हैं पर वह आशय यहां नहीं है "कृष्णार्जुन संवाद" के समय तक संसार भर में केवल एक वैदिक धर्म ही था, ये "मजहब" तो बहुत पीछे चले हैं।

**बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।**
**तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥२०॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय श्लोक५)

संगति-पूर्व में जो धर्म का महत्व कहा है, उस पर कोई यह शंका करे कि धर्म करने में कष्ट उठाना वृथा है क्योंकि कई धर्मात्मा लोग दुःखी देखे जाते हैं? तो इसके उत्तर में यहाँ "आवागमन" का उपदेश करते हैं कि वे दु:खी तो पूर्वजन्मों के कर्मफलों से होते हैं परन्तु अब जो धर्म करते हैं उसके फल में अगले जन्मों में सुख पायेंगे।

अर्थ- हे अर्जुन ! मेरे और तेरे भी बहुतेरे जन्म बीत चुके हैं, किन्तु मैं उन सब (जन्मों के हालात) को जानता हूं परन्तु हे परम् तप ! तुम नहीं जानते।

❖ श्री कृष्ण जी अपने पूर्व जन्मों को क्यों कर जानते थे? इसका उत्तर यह है कि वे योगी थे और योगबल से सब कुछ प्रत्यक्ष हो जाता है।

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।**
**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥२१॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक ७ व ८)

संगति-अब यह बतलाते हैं कि किन दशाओं में श्रीकृष्ण जी या ऐसे महान योगी लोग संसार में आकर जन्म लेते हैं?

अर्थ- हे भारत ! जब-जब धर्म की (संसार में) कमी और अधर्म की ज्यादती हो जाती है, तब-तब मैं साधुओं की रक्षा करने और दुष्टों का नाश करने के लिए *अपने को सृजता हूँ।*

❖ "अपने को सृजता हूँ" यह वाक्य श्री कृष्ण जी का है। जिसका अभिप्राय यह होता है कि श्रीकृष्ण जी महाराज अपने योग बल से जब उचित समझते हैं तब मानुषी शरीर धारण कर लेते हैं। . २. अवतारवादी महाशयगण इसी श्लोक का प्रमाण अप नी पुष्टि में लगाते हैं; परन्तु यहाँ परमेश्वर के शरीरधारी बनने की कोई बात नहीं कही गई।

**जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।**
**त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।**
**न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा॥२२॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक ९ व १४ )

संगति-योगी लोगों के जन्म और कर्म कैसे होते हैं? यह बात श्रीकृष्ण जी अपने निज दृष्टान्त से प्रकट करते हैं अर्थ- मेरे (या मेरे जैसे योगियों का)जन्म और कर्म दिव्य ( अद्भुत प्रकार का) है (क्योंकि) न तो कर्म. मुझमें (योगी होने से ) लिपटते हैं, और न मैं (परमज्ञानी

होने से) उनमें फंसता हूं। इस बात को जो कोई ठीक-ठीक जान लेता है वह देह त्यागने पर पुनर्जन्म को नहीं पाता, किन्तु हे अर्जुन! वह *मुझ (परमात्मा)* को पा जाता है।

- "मुझ" से अभिप्राय "ब्रह्म परमात्मा" से है। श्रीकृष्ण जी ने परमात्माके स्थान में अपने को क्योंकर कहा? इसका उत्तर यह है कि श्रीकृष्णजी परम् योगी थे, इस कारण वे परब्रह्म परमात्मा में इतने लवलीनथे कि अपने को उससे भिन्न नहीं देखते थे।
- ऐसे पूर्ण योगी महात्मागण इसी प्रकार दीक्षा करते हैं, इसका प्राचीन प्रमाण भी मिलता हैं ___ अर्थात् वामदेव ऋषि ने कहा था कि सूर्य में जो पुरुष प्रकाश दे रहा है वह मैं ही हूं-
- पाठकों को ज्ञात हो कि योगीराज श्री कृष्ण जी की ऐसी ही स्थिति थी। अतः जहाँ-जहाँ "परमेश्वर की उपासना करो" कहना उचित था वहाँ-वहाँ कृष्ण जी ने "मेरी उपासना करो" ऐसा कहा है। इसका अभिप्राय यही है कि-"मैं जिस ब्रह्म परमात्मा का प्रतिनिधि हूं उसकी उपासना करो"।

**कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।**

**स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥२३॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक १८)

<u>संगति-</u> ऐसा कर्म से निस्पृह कैसे बन सकता है? यह बात यहां बतलाते हैं।

अर्थ-कोई <u>*कर्म में अकर्म*</u>* को और अकर्म में कर्म को देखता. है वही मनुष्यों में बुद्धिमान है, वही योगी है, और कर्मों को ( यथार्थतया) करने वाला भी वही है.?

- "अकर्म" का तात्पर्य ज्ञान है। कर्मकाण्डी और ज्ञानकाण्डी का परस्पर भारी विरोध जारी था, श्री कृष्ण जी ने उसको बड़े उत्तम प्रकार से निवारण कर दिया है।

**यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।**
**समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥२४॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक २२)

संगति - अब ऊपरी उपदेश पर अमल करने का साधन बतलाते

अर्थ- "यदृष्च्छा" (दैव से, अनायास ही) जो कुछ मिल जाये, उसी से सन्तुष्ट हो जाने वाला, "द्वन्द्व" (जाड़ा-गरमी, हर्ष-शोक, सुख-दुःख आदि) से मुक्त रहने वाला, और सफलता-असफलता को एक समान मानने वाला (ज्ञानी पुरुष) कर्मों को करने पर भी (उन) *के पाप-पुण्य में नहीं फंसता* ।*

- वे कर्म और ज्ञान का मेल कराते हैं- कर्म करने वाला अगर "निष्काम कर्मी" बन जाये तो कर्म उसे न फाँसेंगे और ज्ञानी अगर परोपकार निमित्त संसार के कार्यों को निस्पृह रूप से चलाता रहेगा तो उसके ज्ञान में कोई त्रुटि न होगी, यही आशय यहाँ कृष्ण जी का है।

**दव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे।**
**स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥२५॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक २८)

संगति- उसी बात को और पुष्ट करते हैं

अर्थ- ऐसे (उस प्रकार से) यती लोग जो तीक्ष्ण व्रतों को धारण करते हैं (अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं, जैसे) कोई द्रव्य-यज्ञ (हवन, यज्ञ, दान, पुण्य) करते हैं और तप-यज्ञ (संसार की भलाई के लिए अपने ऊपर कष्ट उठाने का कार्य) करते हैं, और दूसरे कोई लोग स्वाध्याय या *ज्ञान-यज्ञ** में लग जाते हैं।

ज्ञानयज्ञ कौन से हैं—

❖ पढ़ना-पढ़ाना, धर्म चर्चा करना, सत्संग, कथा वार्ता, व्याख्यान आदि-आदि "ज्ञान-यज्ञ" में ही शामिल हैं।एकान्त सेवन, ब्रह्मचिन्तन आदि ज्ञान रूपी महल की ऊँची अटारी हैं।

**सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।**

**तद्विद्वि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया॥२६॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक ३३ व ३४ )

संगति- उन व्रतों की समाप्ति कहाँ होती है सुनो

अर्थ-हे पार्थ ! सब प्रकार के कर्मों (उक्त व्रतों) की समाप्ति ज्ञान में जाकर हो जाती है। उस ज्ञान को पाने के *लिए ज्ञानी गुरु लोगों** को प्रणाम करो और सेवा करके प्रसन्न कर लो तब प्रश्न.. करो तो उस ज्ञान को पाओगे।

❖ अर्जुन ने परमज्ञानी श्री कृष्ण जी को प्रणाम करके श्रद्धापूर्वक प्रश्न किया था, अतः गीता रूपी इस "ज्ञानामृत" का उपदेश प्राप्त किया। श्री कृष्ण जी का अर्जुन को यहां यह उपदेश है कि वह क्षात्र धर्म का पालन करता हुआ पृथ्वी से भार रूपी दुष्ट पापियों को उच्छिन्न कर देवे, तो वेदपाठी ब्राह्मण, तत्वदर्शी ज्ञानी तथा धर्मात्मा तपस्वी लोग अपने-अपने कर्मों में लग जायें बस ! फिर संसार में सर्वत्र "ज्ञान यज्ञ" ही होने लग जाये।

**संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।**

**तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते॥२७॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ५ श्लोक २)

संगति-अगर यह शंका हो कि कभी कर्म और कभी ज्ञान को बढ़ाकर कहा है, फिर किसको श्रेष्ठ माना जाये? तो उत्तर यह है

अर्थ- सन्यास और कर्म ये दोनों ही कल्याण देने वाले हैं (परन्तु) उन दोनों में कर्म *संन्यास* से बढ़कर है।

❖ संन्यास का आशय वेदान्त ग्रन्थों में "ब्रह्मज्ञान" का है। "ज्ञानी" वह माना जाता है जिसके मन में हर वक्त ब्रह्म ही का चिन्तन होता रहे।यद्यपि वस्तुतः तो ज्ञान (कर्म संन्यास) ही श्रेष्ठ और अन्तिम साध्य है, परन्तु कर्मकाण्ड (कर्म योग) की बड़ाई यहाँ श्रद्धा उपजाने के लिए करते हैं क्योंकि साधारण वर्ग के लोगों को तो प्रथम कर्म में ही प्रवृत होना चाहिये, नहीं तो वे भ्रष्ट हो जायेंगे। अतः श्री कृष्ण जी उन साधारण लोगों को सुझाते हैं कि तुम्हारा कल्याण इसी में है कि तुम कर्म को ज्ञान से बढ़कर मान लो तो उसमें तुम्हारी श्रद्धा होगी। फिर कर्म करते-करते अपने आप ही तुम लोग समय पर ज्ञान के अधिकारी बन जाओगे इत्यादि।

**योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाऽधिगच्छति।**
**सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥२८॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ५ श्लोक ६, ७)

<u>संगति-</u> दोनों कैसे कल्याणदायक होंगे? यह बतलाते हैं।

<u>अर्थ-</u> (ज्ञान ) योग से युक्त मुनि ब्रह्म को बहुत जल्दी पा जाता है (क्योंकि ) उस (मुनि) की दृष्टि ऐसी हो जाती है कि वह सब भूतों (प्राणियों) के आत्मा में उस "भूतात्मा" (सब वस्तुओं में व्यापक परमात्मा) को देखता रहता है अतः वह (ज्ञानी) *कर्म करने पर भी उसमें नहीं फंसता*।

❖ कर्म में फंसना अर्थात् लिप्त होना यह है कि पाप-पुण्य करने पर उनके फल में दुःख-सुख भोगना। ज्ञानी पाप-पुण्य करने पर भी सुख-दुःख में नहीं फँसता, क्योंकि जो वस्तुतः ज्ञानी होगा उसका मन ब्रह्म के ध्यान में इतना लवलीन रहता होगा कि उसको सुख -दुःखों का भान तक न होगा।

❖ इस पर श्रुति यह है कि –

❖ नित्वोऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विद्धाति कामान्। तमात्मस्थंयेऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वतो नेतरेषाम्॥

(कठोपनिषद ५- १३)

**उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं। नात्मानमवसादयेत्।**

**आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥२९॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ६ श्लोक ५)

संगति- ऐसा उत्तम जो ज्ञान है, उसकी प्राप्ति का अब साधन बतलाते हैं।

अर्थ - *आत्मा से आत्मा को ऊँचा उठावे**, किन्तु आत्मा को नीचे न गिरने देवे (क्योंकि) आत्मा ही अपना मित्र है और वह स्वयं ही अपना शत्रु है।

- ❖ प्रत्येक मनुष्य अपने को अच्छे कामों में लगाकर अपने आत्मा को उन्नत बना सकता है। पाप कर्मों से आत्मा नीचे गिरेगी, अतः उससे बचा रहे। __अर्जुन से कहते हैं कि अगर तू अपने आत्मा को उन्नत बनाना चाहता है तो युद्ध से मुंह मत मोड़ क्योंकि क्षत्रिय की आत्मा ऐसा करने से गिर जाती है। तू अपने आत्मा को गिरने न दे किन्तु ऊँचा उठा।

**योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।**

**एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥३०॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ६ श्लोक १०)

संगति-आत्मा को ऊँचे दरजे पर उठाने में सफलता कैसे प्राप्त हो यह बतलाते हैं

अर्थ- योगी (परमात्मा से मिलने की इच्छा वाला ज्ञानी पुरुष) अकेला रहता हुआ, गुप्त स्थान में निवास करता हुआ, विषयों से बचता हुआ, परिग्रह (दूसरों से सहायता) न लेता हआ, आत्मा (परब्रह्म परमात्मा) के साथ जुट जावे ( मेल-मिलाप कर लेवे)।

**समंकायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।**

**संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।**

**यथा दीपो निवातस्थो नेगते सोपमा स्मृता॥३१॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ६ श्लोक १३ व १९)

संगति-परमात्मा के साथ मिलाप होने का और भी उपाय बतलाते है

अर्थ-(वह योगी ऐसा आसन लगाकर योग करने के लिये बैठे कि) सारा शरीर और गला सीधा रहे, हिलने डोलने न पावे (बल्कि) बिल्कुल स्थिर रहे और अन्य किसी भी दिशा की ओर न देखता हुआ केवल अपने नासिका के अगले भाग को देखता हुआ, (ओ३म् का जप और प्रणायाम करता रहे) वह शरीर को ऐसा अचल रखे जैसे दीपकों की ज्योति हवा न चलने पर स्थिर रहा करती है।

**आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।**

**सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥३२॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ६ श्लोक ३२)

संगति- उससे भी और श्रेष्ठ उपाय परमात्मा को जल्दी पा जाने का बतलाते हैं __ अर्थ-हे अर्जुन ! जो कोई अपने उपमा से सब जगह सब लोगों *को (अपने ही) समान सुखी-दुःखी*'. देखता है वह "परम् योगी" माना जाता है।

- अर्थात् जैसे मैं दुःख नहीं पसन्द करता, उसी प्रकार अन्य लोग भी नहीं पसन्द करते, अत: जैसे मैं अपने दुःखों को दूर हटाने का यत्न करता रहता हूं, इसी प्रकार मेरा कर्तव्य है कि दूसरों के दुःख निवारणार्थ भी पुरुषार्थ करता रहूँ। ऐसे परोपकारी योगी से परमात्मा अवश्य प्रसन्न होंगे। अर्जुन भी परोपकारी धर्मात्मा युधिष्ठिर की रक्षा निमित्त युद्ध करे तो वह "परम्योगी" माना जा सकेगा, यह अभिप्राय श्रीकृष्ण जी का है।

**यो मां पश्यति सर्वत्र च मयि पश्यति।**

**तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥३२॥**

**(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ६ श्लोक ३०)**

संगति- और भी सर्वश्रेष्ठ उपाय परमात्मा की प्राप्ति का बतलाते हैं

अर्थ- जो कोई (योगी या भक्त) मुझ (परमात्मा) को सब जगह1और सबको मुझमें देखता है उसको मैं (परमात्मा) नहीं नाश2 करता हू और न वह मुझको नष्ट3 करता है।

1. अर्थात् परमात्मा को सर्वव्यापक माना जाता है।
2. नाश तो जीवात्मा का होता ही नहीं कयोंकि वह अजर, अमर है; परन्तु यहाँ "नाश" से अभिप्राय पतित होने, गिरने या नरकगामी होने का है।
3. परमेश्वर को नष्ट करना यह है कि उसको भूल जाना तथा उसकी आज्ञा के विरूद्ध काम करना।इस पर श्रुति यह है--

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।

(ईशोपनिषद ६ तथा यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ७)

**भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।**

**अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥**

**अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥३४॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ७ श्लोक ४, ६)

संगति- अब परमात्मा में श्रद्धा उपजाने के लिए उसकी महिमा वर्णन करते हैं

अर्थ-मेरी (परमात्मा की आठ प्रकार की भिन्न-भिन्न प्रकतियाँ (शक्तियाँ) है उनके नाम सुनो- (१) भूमि (२) जल (३) अग्नि (४) वायु (५) आकाश (६) मन (७) बुद्धि (८) अहंकार।

मैं (परमेश्वर) ही इस सारे ( उक्त आठ प्रकृतियों वाले) जगत की रचना और प्रलय करने वाला हूँ।

**मत्तः परतरं नान्यत्किचिदस्ति धनंजय।**

**मयि सर्वमिदं प्रोक्तम्। सूत्रे मणिगणा इव॥३५॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ७ श्लोक ७ )

संगति-परमात्मा का और भी महत्व दर्शाते हैं-

अर्थ- हे धनंजय ! मुझ( परमात्मा) से बढ़कर और कोई भी नहीं है1- (मुझमें ही) यह सब सूत में मणियों की भाँति पिरोया हुआ है2।

1. इस पर श्रुति है "तदुनात्येति कश्चन....."(कठोपनिषद ४- ९)
2. इस श्लोक का एक पाद मूल में नहीं है, वर्तमान गीता में "मयि सर्वमिदं प्रोतं" है। अर्थ इसका मैंने कोष्ठक में रख दिया है क्योंकि बिना इसके आशय नहीं खुलता।

**रसोऽहमप्सु कौन्तेय! प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः।**

**प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥३६॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ७ श्लोक ८)

संगति-किस प्रकार पिरोया है सुनो

अर्थ-हे कौन्तेय ! मैं पानी में रस (रूप से मौजूद) हूं । चन्द्र-सूर्य में प्रभा (किरण या प्रकाश) हूं । सब वेदों में श्रवण करने योग्य (ओ३म) हूं।आकाश में शब्द हूँ और मनुष्यों में पुरुषार्थ1हूँ।

1. अर्थात् प्रत्येक वस्तु का जो सारांश तत्व या जौहर है उसी को परमात्मा की सत्ता समझो।

**पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।**

**जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु॥ ३७।।**

**(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय** ७ श्लोक ९)

अर्थ-पृथिवी में मैं उत्तम सुगन्ध हूँ, अग्नि में तेज (रूप से विद्यमान ) हूं।सब भूतों ( प्राणियों) में जीवन हूं। और तपस्वियों में तप, (रूप से विराजमान हो रहा) हूं।

**बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।**
**बलं बलवतां चाहम कामरागविवर्जितम् ॥३८॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ७ श्लोक १० व ११)

अर्थ- बुद्धि वालों में बुद्धि, तेज वालों में तेज और बल वालों में काम और राग से रहित बल मैं ही हूँ।

**चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।**
**आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।**
**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥३९॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ७ श्लोक १६, १९ )

संगति- ऐसे महान प्रभु परमात्मा को कौन लोग स्मरण करते है? सुनो-------

अर्थ-हे अर्जुन! चार प्रकार के सुकृति (धर्मात्मा) लोग मुझ (परमेश्वर) को भजते है।(१) आर्त (दुखी),(२) जिज्ञासु (ब्रह्म को जानने की इच्छा वाले), अर्थी (कामना वाला-ख्वाहिशमन्द) और हे भारतवंशी ! चौथा ज्ञानी। फिर उन सबमें कौन बढ़कर है? वह पूर्ण ज्ञानी महात्मा, जो यह समझ लेवे कि सब कुछ2 वासुदेव3( परमात्मा ) ही हैं।

2. सब ब्रह्म है..... और सब में ब्रह्म है..... ये दो पक्ष अद्वैत और द्वैतवादियों के हैं। द्वैतवादी ऐसा मानते हैं कि ब्रह्म को सब में व्यापक देखता-देखता सबको ब्रह्म ही मानने लग जाता है। देखों श्लोक सं. ४५ की टिप्पणी ।

3. इस शब्द का समास इस प्रकार है- **वासयति छादयति स्व प्रकाशेन इति वासुः। स्व-प्रकाशेन दीव्यतीति देवः। स चासौ देवश्च वासुदेवः।** भावार्थ- जो अपने प्रकाश से ढांकता है वह 'वासु' कहलाता है और जो अपने प्रकाश से चमकता है वह 'देव' कहलाता है, इस प्रकार वासुदेव शब्द परमात्मावाचक रूप में आया है।

**जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।**

**ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्म कर्म चाखिलम्॥४०॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ७ श्लोक २९)

संगति- फिर उस महात्मा का आगे का कार्य बतलाते है

अर्थ- जो लोग जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु से छूट जाने ( मुक्ति पाने ) के लिए मेरा ( परमात्मा का) सहारा लेकर यत्न करते हैं, वे उस ब्रह्म को, सम्पूर्ण अध्यात्म ज्ञान को और सब कर्मों को जान लेते हैं1।

1. जान लेने से अभिप्राय साक्षात्कार कर लेने का है। जिस प्रकार हम लोग मिठाई को जिह्वा पर रखते ही उसके स्वाद का अनुभव (साक्षात्कार ) करते हैं, उसी प्रकार जो लोग ब्रp-ह्म परमात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे होंगे वे ही ब्रह्म को जान लेने वाले कहे जायेंगे। अर्जुन यह सब जानकर क्या करे?

**अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।**

**यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥४१॥**

**(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ८ श्लोक ५)**

संगति- फिर वह महात्मा मुक्ति को कैसे पा सकता है? यह बतलाते हैं।

अर्थ-जो कोई अन्तकाल (मरते समय) मेरा (परमात्मा ही का) स्मरण करता हुआ शरीर छोड़ जाता है, वह मेरे भाव (मुक्ति धाम) को पा जाता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है2?

2. अर्जुन परमात्मा को अपना मालिक प्रभु मानता हुआ उसको सर्वव्यापक देखने लग जाये तो यह भेद समझ पायेगा कि कुरुक्षेत्र के संग्राम भूमि में उसको उसके प्रभु ने ला खड़ा किया था, अतः युद्ध से पीछे हट जाना प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन करना ही था।इस पर यह श्रुति है वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यास योगाद्यतयः शुद्ध सत्वाः। ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।(मुण्डक उपनिषद ३-६)

**तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।**
**मय्यर्पित मनो बुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥४२॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ८ श्लोक ७ )

संगति- अतः वह उपाय बतलाते हैं कि मरते समय ईश्वर में मन लगा रहे।

अर्थ-इसीलिए सब काल में3 मुझ (परमात्मा) में मन और बुद्धि को अर्पित करके4 मुझको ही स्मरण करता हुआ युद्ध करे तो. निस्सन्देह मुझको ही पा जायेगा, अर्थात मुक्ति प्राप्त कर लेगा।

3. क्योंकि मरते समय तभी ब्रह्म की याद आयेगे जब जन्म भर उसका मनन करता रहेगा।
4. कैसे अर्पण करें? मन में सिवाय ब्रह्म के और किसी का मनन न करें और बुद्धि से किसी अन्य का चिन्तन न करे, यह कार्य अत्यन्त कठिन तो है पर अभ्यास से सुलभ होगा।

**सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।**
**मूर्ध्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥॥४३॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ८ श्लोक १२)

संगति-कैसे स्मरण करे? सुनो----

अर्थ- सब द्वारों (आँख कान... आदि) को संयम करके, मन को हृदय में रोककर अपने प्राणों को मूर्धा (शिर) में चढ़ाकर योगाभ्यास में लग जाये।1

1. उस दशा में आत्मा से परमात्मा का ध्यान तथा उसके “ओ३म" नाम का जप करे। इस पर यह श्रुति है--

यः पुनारेतत् त्रिमात्रमित्यनेनैवाक्षरेण परं।
पुरुषमभिध्यायीत स तमधिगच्छति।।

**इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।**
**ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।४४॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ९ श्लोक १)

संगति- अब उससे और बढ़िया अधिक ज्ञान सुनाने की प्रतिज्ञा करते हैं

अर्थ-हे निष्पाप अर्जुन ! तुझको हम अब इससे भी और उत्कृष्ट ज्ञान2, जो विज्ञान के सहित है, सुनाते हैं जिसको जान करके तू अशुभ बातों से छूट जायेगा।1

1. यहां स्पष्ट ही अर्जुन को कह दिया गया है कि वह परमात्मा का पाना (मुक्तिधाम को जाना) चाहता हो, तो भगवान का भजन करता हुआ ही युद्ध में लगा रहे। कैसे? वह बाण में, धनुष में, लक्ष्य में तथा अपने भीतर-बाहर सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म को व्यापक देखता रहे और यह मानकर युद्ध में डटा रहे कि मुझे मेरे प्रभु परमात्मा ने इस कार्य में लगा रखा है।
2. वह परम् ज्ञान परब्रह्म परमात्मा को सर्वत्र व्यापक देखने का अभ्यास करना ही है, अत: अगले श्लोक को पाठक ध्यान से पढ़ें।

**अहंक्रतुरहंयज्ञःस्वधाऽहमहमौषधम्।**
**मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥**

**वेद्यं पवित्रोंकार ऋक् साम यजुरेव च।।४५॥**

**(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ९ श्लोक १६व १७)**

संगति- वह ज्ञान यह है कि

अर्थ-मैं (परमात्मा) “यज्ञ" हूँ, मैं ही “क्रतु1" हूँ, मैं ही “स्वध2." हूँ मैं ही औषधि" (हवन सामग्री) हूँ, मैं ही “मन्त्र" हूँ, मैं ही “आज्य" (धृत) हूँ, मैं ही ( यज्ञ की) “अग्नि" हूँ, और यज्ञ में आहुत हुआ सामान (भी) मैं ही हूँ3, मैं ही जानने योग्य पवित्र “ओंकार'." हूँ, और मैं ही ऋक्, साम “यजुर्वेद६." भी हूँ।

1. क्रतु से बड़े-बड़े यज्ञ अश्वमेधादि से अभिप्राय है।
2. “स्वधा"-पितरों सम्बन्धी यज्ञ सामग्री।
3. अभिप्राय यह है कि सब वस्तुओं में परमात्मा को व्यापक देखो, यहाँ तक कि परमात्मा से पृथक कुछ भान ही न हो। इतना अधिक परमात्मा में लवलीन होकर उसी में तन्मय हो जाना ही ऐसा ज्ञान है जो सर्वोत्तम है और पूर्वश्लोक में इसी के खास उपदेश देने का वादा किया गया था।
4. इस पर यह श्रुति है

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः।स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः।
ओमित्येवं धयायथ आत्मानं स्वस्तिवः पाराय तमसः परस्तात्॥६॥

(मुण्डक उपनिषद २-६)

**यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।**
**यत्पस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥४६॥**

(वर्तमान भगवद्गीता गीता ९ श्लोक २७)

संगति- जो इस प्रकार ब्रह्म परमात्मा को सर्वत्र व्यापक जान ले तो फिर वह क्या करे? सुनो

अर्थ- हे कौन्तेय ! जो काम तू करे, जो कुछ खाये, जो कुछ होम करे, जो कुछ दान करे, और जो कुछ तपस्या करे, वह सब (उन पुण्य-कर्मों का फल) मुझे (परमात्मा को) अर्पण कर

1. अर्थात निष्काम भाव से कर्म करता रहे। कर्म का फल परमात्मा को अर्पण कर देने से यह परिणाम होगा कि उनसे होने वाले सांसारिक सुख न मिलेंगे किन्तु मुक्ति से निकटता होती चली जायेगी।

**ज्योतिषाम्हमंशुमान्, नक्षत्राणामहं शशि॥४७॥**

**(वर्तमान भग**वद्गीता अध्याय १० श्लोक २१)

संगति- पूर्व श्लोक संख्या ४५ में जो अपूर्व ज्ञान परमात्मा का सर्वव्यापक होना कहा है, उसी की व्याख्या यहां से श्लोक संख्या ५३ तक में करते हैं। अर्थात् यह बतलाते हैं कि परमात्मा को किस वस्तु में किस रूप में देखे !

अर्थ-ज्योति (प्रकाश) वालों में मैं[2] किरणों वाला (सूर्य) हूँ। नक्षत्रों में मैं चन्द्रमा हूँ।

2. वर्तमान गीता में इस “अहम्" के स्थान में “रवि" पाठ है।

**रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।**

**महर्षीणां भृगुरहं, मेरु: शिखरिणामहम्॥४८॥**

वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक २३ व २५)

अर्थ- रुद्रों में मैं शंकर हूँ,यक्ष राक्षसों में मैं नारद हूँ।महर्षियों में मैं भृगु हूँ और शिखरवालों में मैं मेरु पर्वत हूँ।

**अश्वत्थःसर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।**

**उच्चैः श्रवसमश्वानां सिद्धानां कपिलो मुनिः।।४९॥**

**(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक** २६ व २७)

अर्थ- सब वृक्षों में मैं पीपल हूँ, देवऋषियों में मैं नारद हूँ। घोड़ों में मैं उच्चैःश्रवा (ऊँचे कानों वाला घोड़ा) हूँ। सिद्ध लोगों में मैं कपिल मुनि हूँ।

**ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्।**

**आयुधानामहं वजं सर्पाणामस्मि वासुकिः॥५०॥**

**(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय** १० श्लोक २७ व २८)

अर्थ- हाथियों में मैं ऐरावत हूँ, मनुष्यों में मैं राजा हूँ। आयुधों (शस्त्रों) में मैं वज्र हूँ। और सर्पो में मैं वासुकि हूँ।

**वरूणो यादसामहम्, यमः संयमतामहम्।**

**प्रहलाद सर्वदैत्यानां कालः कलयतामहम्॥५१॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक २९ व ३०)

अर्थ- पानी के जीवों में मैं वरूण हूं, नियमन (न्याय) करने वालों में मैं यम हूं। सब दैत्यों में मैं प्रहलाद हूँ[3], गणना करने वालों में मैं काल हूँ।

3. यह चौथा पाद मूल में नहीं है,मैंने वर्तमान गीता से उद्धृत कर दिया है।

**मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्।।**

**अक्षराणामकारोऽस्मिरामःशस्त्रभृतामहम्।**

**मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः॥५२॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक ३० ३१, ३३ और ३५ )

अर्थ- वन के पशुओं में मैं सिंह हूँ। पक्षियों में मैं गरूड़ हूँ, अक्षरों में मैं "अ" हूँ। शस्त्रधारियों में मैं राम हूँ। महीनों में मैं मार्गशीर्ष (अगहन) तथा ऋतुओं में बसन्त हूँ।

**वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः।**
**मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः।।५३॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक ३७)

अर्थ-वृष्णी वंशवालों में मैं वासुदेव अर्थात् श्री कृष्ण हूँ। पाण्डवों में मैं अर्जुन हूँ। मुनियों में मैं व्यास हूँ। और कवियों में मैं उशना कवि हूँ।

**औषधिनाम्4."।नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनांपरन्तप।॥५४॥**

**(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १० श्लोक ४०)**

अर्थ- हे बड़े तपस्वी अर्जुन ! (निदान कहाँ तक गिनायें, वस्तुतः तो) मेरे (परमात्मा के) इन दिव्य विभूतियों का अन्त ही नहीं है।5

4. यह एक ही शब्द है, अर्थ “औषधियों का" होगा।वर्तमान गीता में यह शब्द कहीं भी नहीं है।
5. परमात्मा अनन्त है, उनकी विभूतियाँ भी अनन्त ही हैं। यहां जो थोड़ी-सी दिग्दर्शन कराई गई, इतने से जिज्ञासु और अनेक विभूतियों को समझ सकता है कि सर्वत्र प्रत्येक वस्तु में, जर्रे-जरे में, परमात्मा को ही रमा हुआ देखकर सर्वत्र उसको नमस्कार करे।यजर्वेद के १६वें अध्याय में यही उपेदश है कि प्रत्येक वस्तु में परमात्मा को नमस्कार करे। परमात्मा के सबमें व्यापक होने की व्याख्या बृहदारण्यक उपनिषद् के अन्तर्यामी ब्राह्मण में अति उत्तम आई है जिसका एक मन्त्र निम्न प्रकार है

   यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरों यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः॥

   (बृहदारण्यक उपनिषद ३-२)

❖ इसी प्रसंग में श्रीमान “कन्नोमल जी एम.ए." अपने “गीतादर्शन" नामक पुस्तक के पृष्ठ संख्या ७२ पर कहते हैंपिक और कोकिला के मधुर गान में वही है, पुष्पवाटिका की सुगंधि में वही है। नवयौवना के सुन्दर रूप में उसी की झलक है। मेघ के प्रचण्ड गर्जन में उसी का शब्द है।नक्षत्रों की ज्योति वही है अन्तःकरण की शान्त वाणी में वही बोलता है। समुद्र के तुंग तरंगों में उसी की शक्ति है। भागीरथ

के जलप्रवाह में उसी का उद्वेग है।वक्ता के पदलालित्य में उसी का प्रभाव है।चित्रकार की लेखनी में उसी का महत्व है। शिल्पकार की टांकी में उसी की शक्ति का अविष्कार है। न्यायाधीश का वही न्याय है।योद्धा का वही वीरत्व है। परोपकारी का वही धर्म है। सिंह का कोप, बकरी की दीनता, हिरन की चंचलता आदि ये सभी उसी की शक्ति के रूप हैं।

**पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्त्रशः।**
**नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥५५।**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक ५)

संगति- जो परमात्मा को उक्त प्रकार सबमें व्यापक देखने का अभ्यासी हो जाये, उसके लिए और आगे का मार्ग दर्शाते हैं:

अर्थ-हे अर्जुन ! ( मेरी विभूतियों को समझ लेने पर अब) तू मेरे (परमात्मा के) अनेक प्रकार के रंगों और आकारों वाले सैकड़ों,हजारों रूपों को देख।1

- नक्षत्रों में चन्द्रमा, वृक्षों में पीपल आदि देखते-देखते अब यह भावना धारण करो कि सर्वत्र परमात्मा विराजमान है।न केवल चन्द्रमा में वरन् प्रत्येक नक्षत्र में वह मौजूद है। न केवल पीपल में बल्कि प्रत्येक वृक्ष में और उसकी डाली-डाली और पत्ते-पत्ते में वह विराजमान हो रहा है। इस “विश्वरूपदर्शन" का मुख्य अभिप्राय यही है कि मनुष्य परमात्मा को प्रत्येक वस्तु में अन्तर्यामी समझ कर उसको सर्वत्र नमस्कार करे।इस पर यह श्रुति है–

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात॥

(यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र १)

**न तु मां शक्ष्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।**
**दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥५६॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक ८)

संगति- अब उस अद्भुत रूप वाले को किन आंखें से देखें यह बतलाते हैं अर्थ- परन्तु मुझ (परमात्मा) को तू इन आँखों (चर्म चक्षुओं) से तो नहीं देख सकता, (इसलिए) तुझको मैं “दिव्याचक्षुर2."देता हूँ। अब मेरे योग के ऐश्वर्य को देख-3

- दिव्य चक्षु- खास प्रकार की आँखें-ज्ञान नेत्र ।

  इस पर यह श्रुति है–

  स आत्मा मनोऽस्य दवं चक्षुःसवा एष एतेन।

  देवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते॥

  (छान्दोग्योपनिषद ८- १२- ५)

- इससे स्पष्ट है कि अर्जुन को विश्वरूप का दर्शन श्री कृष्ण जी ने अपने योगबल से कराया था।जो लोग यह समझते हैं कि अर्जुन ने किसी खास रूप का दर्शन किया होगा, उनको ज्ञात रहे कि यहाँ स्पष्ट कह दिया गया है कि “इन आँखों से तुम उस निराकार ब्रह्म को नहीं देख सकते।" इसीलिए श्रीकृष्ण जी ने अपने योगबल से अर्जुन के हृदय में अपना ज्ञान भर दिया (जिस प्रकार आजकल मिस्मेरिजमMesmerism वाले लड़कों के आत्माओं पर अपना प्रभाव डाला करते हैं) यही दिव्य चक्षु दे देना था। अब ज्ञान की आँखों से अर्जुन ने देखा तो ब्रह्म परमात्मा को सर्वत्र व्यापक पाया, वही “विश्व-रूप दर्शन" है। लोकमान्य तिलक महाराज भी "गीता-रहस्य" के एक प्रकरण “अध्यात्म" में पृष्ठ २५० पंक्ति १ पर कहते हैं कि “गीता में वर्णित भगवान का अर्जुन को दिखलाया हुआ विश्वरूप भी मायिक ही था।"

**अनेकवक्त्र नयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।**

**अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥५७॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक १०)

संगति- वह रूप कैसा है?सुनो

अर्थ- अनेकों मुखों. और आंखों वाला है और अनेकों प्रकार का दीखता है। अनेकों उसके दिव्य भूषण वस्त्र हैं। ओर अनेकों आयुधों (शस्त्रों) से वह सुसज्जित है।

**यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।**
**तथा तवामी नरलोकवीरा, विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति॥ ५८॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक २८)

संगति- यह तथा अगला श्लोक अर्जुन की ओर से स्तुति रूप में है। परमात्मा का दर्शन कर लेने पर उसकी स्तुति कैसे करे? यह बतलाते हैं

अर्थ- जिस प्रकार नदियों का जल-प्रवाह बड़े वेग के साथ समुद्र की ओर दौड़ा चला जाता है, उसी प्रकार (हे विराट रूप भगवान !) ये मनुष्य लोग-शूर-वीर आदि (बड़े वेग से) आपके मुखों में प्रवेश करते चले जा रहे है-

**यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंग, विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।**
**तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः॥५९॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक २९)

अर्थ-जैसे जलते हुए दीपक की ओर कीट-पतंग व मच्छर आदि नाश होने के लिए बड़े वेग से दौड़े चले आते हैं, उसी प्रकार ये लोग भी नाश होने (मरने) के लिए आपके मुख में बड़े वेग से घुसते चले जा रहे है।[4]

- मरने वालों के लिए परमात्मा काल रूप है। कुरुक्षेत्र के उस संग्राम भूमि में १८ अक्षोहिणी सेना मरने के लिए आ डटी थी, उसी का दृश्य अर्जुन को भासित हो रहा था कि ये सब मौत के मुंह में दौड़े चले जा रहे हैं।

**आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो, लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।**

**नमो नमस्तेऽस्तु सहस्त्रकृत्व: नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते॥६०॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक ३१, ३२, ३९ और ४०)

अर्थ- (हे बड़े अद्भुत रूप वाले!) आप ऐसे उग्र (तेज तर्रार-तीक्ष्ण, काल) रूप वाले कौन है? (मैं समझता हूँ कि यहां पर आप इन सब लोगों को समेट लेने के लिए प्रवृत्त हो रहे हैं!!! आपको नमः हो (नमस्ते) नमः हो, हजार बार नमः हो,

आपको आगे से नमः हो, और पीछे से भी नमः होवे।

- ❖ प्रत्येक मनुष्य को इसी प्रकार अर्जुन की भांति परमात्मा को प्रतिदिन (प्रातः सायंकाल की सन्ध्योपासना में) नमस्कार करना चाहिए।

**नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।**

**शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥६१॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक ५३)

संगति- विश्वरूप दर्शन समाप्त हुआ; अब उसकी महानता प्रकट करते हैं

अर्थ- हे अर्जन ! मेरे ( परमात्मा के) जिस अदभुत रूप को तूने अभी देखा है, वह ऐसा है कि उसे कोई न तो वेदों को पढ़ने से, न तप से, न दान से और न यज्ञ करने से ही देख सकता है।

**मत्कर्मकृत् मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।**

**निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥६२॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक ५५)

संगति- फिर आखिर किसी प्रकार देख भी सकेगा इस प्रश्न का उत्तर देते हैं

अर्थ- हे पाण्डव ! जो कोई मेरे (परमात्मा के) लिए कर्म करता है (निष्काम कर्मी बनता है) मेरा (परमात्मा का) भक्त बन जाता है, सब भूतों (प्राणियों) से निर्वैर (शत्रुता न रखने वाला) और संग रहित (किसी से ज्यादा प्रेम न रखने वाला) बन जाता है, वह ही मुझ (परमात्मा) को पाता है। (परमात्मा का दर्शन कर लेता है5)

- शांकर भाष्य में भी यही कहा है कि इस लोक में पूरे गीता-शास्त्र का तात्पर्य आ गया है, इससे प्रकट है कि"गीता का भक्ति-मार्ग यह नहीं कहता कि आराम से बैठकर सिर्फ राम-राम जपा करो, प्रत्युत उसका कथन है कि उत्कृष्ट भक्ति के साथ ही साथ उत्साह से सब निष्काम कर्म करते रहो।

इस पर यह श्रुति है---

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मोऽमृतो भवत्यक्ष ब्रह्म समश्नुते॥
(कठ उपनिषद ६-१४)

**यथा सर्वगतं सौम्यादाकाशं नोपलिप्यते।**
**सर्वत्रावस्थितो देहे तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते॥ ६३॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १३ श्लोक ३२)

संगति- ऊपर परमात्मा का दर्शन करने का उपाय बतलाया गया है। अब कहते हैं कि उसकी खोज में हमें कहीं दूर देश- काशी, प्रयाग, जगन्नाथ, रामेश्वर आदि- नहीं जाना पड़ेगा

अर्थ- वह आत्मा (परमात्मा) सर्वत्र (देह के रग रग में) ठहरा हुआ है परन्तु इससे उसी प्रकार लिप्त नहीं होता जिस प्रकार आकाश सब जगह रहने पर भी सूक्ष्म होने से (किसी वस्तु के साथ) लिप्त नहीं होता।

❖ इसलिए उसका दर्शन करने के लिए बाहर नहीं बल्कि अपने हृदय के अन्दर और आत्मा के भी अन्दर ही ढूंढो।

**यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।**
**क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत॥६४॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १३ श्लोक ३३)

संगति- ऊपर आकाश का दृष्टान्त दिया गया, अब सूर्य का दृष्टान्त देते है----

अर्थ- जिस प्रकार अकेला एक सूर्य सब लोकों को प्रकाशित करता है। हे भारत ! उसी प्रकार वह क्षेत्रों ( परमात्मा इस सारे क्षेत्र) समस्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित कर रहा है।

❖ इस श्लोक में क्षेत्र-क्षेत्री पारिभाषिक शब्द आये हैं। श्री स्वामी शंकराचार्य जी महाराज का भाष्य इस प्रकार है—

क्षेत्रम् महाभूतादि घृत्यन्तम।

भाषार्थ-महाभूतों को आदि से ले के धृतिपर्यन्त ( समुदाय रूप) क्षेत्रों = परमात्मा।

❖ पूर्व श्लोक में आकाश तथा इस श्लोक में सूर्य के दृष्टान्त से उस परब्रह्म परमात्मा के सर्वव्यापक होने का सिद्धांत समझाया गया है। एक बात स्मरण रखने योग्य है कि पूर्व श्लोक में जहां परमात्मा का हमारे शरीर में व्यापक होना दर्शाया है, वहां इस श्लोक में उसका समस्त ब्रह्माण्ड में विद्यमान होना कथन किया गया है।तात्पर्य यह है कि प्रथम अपने शरीर के रग रग में उसको हम देखें फिर सर्वत्र देखने का अभ्यास करें।

इस पर यह श्रुति है—

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः॥

(कठ उनिषद ५-११)

**सत्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।**

**ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत॥६५॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १४ श्लोक ९)

संगति-परमात्मा के दर्शन की दृढ इच्छा कैसे हो सकती है? यह बतलाते हैं

अर्थ - हे भारत ! (तीन गुण मनुष्य के शरीर के अन्दर रहते हैं-सत्व, रजः, तमः) सत्व गुण जब बढ़ जाता है तो सुख में लगाता है। रजो गुण कर्म में लगाता है। और तमो गुण ज्ञान को छिपा करके प्रमाद (आलस्य ) में लगा देता है।

**ऊर्ध्व गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।**

**जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥६६॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १४ श्लोक १८)

संगति- उन तीनों गुणों का फल सुनो

अर्थ-सत्व गुण वाले ऊपर को जाते हैं। रजो गुण वाले मध्य में रहते हैं और खराब वृत्तियों वाले तमोगुणी लोग नीचे को जाते हैं।

- "ऊपर" से यहां अभिप्राय ऊँचा दरजा, उच्च पद या उन्नतावस्था से है। इसी प्रकार "नीचे" से पतित दशा समझो।
- इसलिए जो कोई अपना भला चाहे( परमात्मा का दर्शन करना चाहे) वह तमो गुण को बढ़ने न देवे, तामसी पदार्थों को खाने तथा तमोगुणी लोगों की संगति में रहने से तमो गुण बढ़ेगा अतः उनसे बचा रहे।
- इसलिए उन्नति (परमात्मा का दर्शन) चाहते हो, तो सत्व गुणी बनो, अच्छे धर्मात्मा सज्जन लोगों की संगति में रहने तथा सात्विकी भोजन खाने आदि से सात्विकी स्वभाव वाले बनोगे।

**समदुःख-सुखः स्वस्थः समलोष्ठाश्मकाञ्चनः।**
**तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्य निन्दात्मसंस्तुतिः॥६७॥**
**मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।**
**सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥६८॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १४ श्लोक २४ व २५)

संगति- ऊपर तीनों गुणों का विवरण सुनाकर अब यह उपदेश देते हैं कि परमात्मा का दर्शनाभिलाषी "गुणातीत" बन जाये।

अर्थ-गुणातीत ( उक्त तीनों गुणों की पहुंच से आगे बढ़ जाने वाला ) वह कहलायेगा, जो सुख-दुःख को बराबर समझ ले, जो स्वस्थ अपने अन्दर रमण करने-वाला हो, जो ढेला, पत्थर, सोना, चाँदी को समान मानता हो; जो प्रिय और अप्रिय को बराबर समझता हो, धीर (धैर्य रखने वाला) हो जो अपनी निन्दा और स्तुति को बराबर मानता हो॥६७॥

जो मान और अपमान को तुल्य (एक समान) जानता हो, जो मित्र-शत्रु के पक्ष को तुल्य रखता हो, और (सबसे बढ़ कर यह कि) जो सब ( प्रकार के) *कार्यों का त्याग कर* चुका हो (ऐसा महात्मा) परमेश्वर का दर्शन करने का पात्र माना जायेगा॥६८॥

- सब कार्यों को त्यागने से अभिप्राय सांसारिक कार्यों जैसे खेती, व्यापार, राज्य-शासन आदि- को त्यागने से है, किन्तु जप, तप, स्वाध्याय योगाभ्यास- आदि ऐसे कार्य नहीं हैं, जिनका त्याग किया जाये।

  इस पर यह श्रुति है—

कामस्याप्ति जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम् स्तोमं।
महदुरु गायं प्रतिष्ठा दृष्ट्वा धृत्वा धीरो नचिकेतीत्यस्त्राक्षीः।।

कठोपनिषद ३०२- ११) २.

**मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।**
**स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥६९॥**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १४ श्लोक २६)

संगति- उक्त प्रकार गुणातीत बन जाने का फल बतलाते हैं—

अर्थ-जो कोई अव्यभिचारी (डाँवाडोल न होने वाली) भक्ति योग द्वारा मेरी (परमात्मा की) सेवा (उपासना) करता है वह इन (तीनों) गुणों को पार करके मुक्ति को पा जाता है।

**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥७०।**

(वर्तमान भगवद्गीता अध्याय १८ श्लोक ६६)

संगति- जो महात्मा गुणातीत बन गया हो वह फिर क्या करे? यह बतलाते हैं

अर्थ- सब धर्मों को छोड़कर केवल एक मेरी (परमात्मा की) शरण में आ जा, मैं तुझको सब पापों से छुड़ा दूंगा, शोच (चिन्ता, फिक्र) मत कर'।

प्रश्न- क्या परमेश्वर पाप को माफ कर देंगे, उसका फल नहीं **भुगायेंगे?**

उत्तर- योग (ध्यान, धारणा, समाधि) तथा ज्ञान रूपी अग्नि में पाप रूपी मल दग्ध हो जाता है।

यही बात उपनिषदों में कही गई है, यथा

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसशयाः।
क्षीयन्ते चात्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥(मुण्डक उपनिषद ४-८)
भला जी! अर्जुन इस पर कैसे अमल करता ? अर्जुन को यह कहा गया है कि तू अभी तो अपने वर्णाश्रम धर्म में बंधा हुआ है इसीलिये इस रणक्षेत्र में आ जाने से इस युद्ध में भाग ले। फिर विजय होने पर यज्ञ-दानादि शुभ कार्यों को करता हुआ निष्काम कर्मी बन जाना, पश्चात् "गुणातीत" बनने का अभ्यास करना और उसके पश्चात् इस श्लोक पर अमल दरामद करके मुक्ति का अधिकारी बन जाना। - इस प्रकार यह उपदेश अर्जुन को उसके जन्म भर के लिए दे
दिया गया था।

**इस श्लोक से बहुत लोग भारी भ्रम में पड़ गये हैं कि यह कैसा उपदेश है कि "सब धर्मों को छोड़ देवे"। परन्तु अब उन्हें जानना चाहिए कि वर्तमान भगवद्गीता के इस १८वें अध्याय के अन्तिम श्लोक की संगति १४वें अध्याय के ऊपरी २६वें श्लोक के साथ मिलाने से स्पष्ट यह अभिप्राय निकल आता है कि यह उपदेश (सब धर्म छोड़ने का) और किन्ही लोगों को नहीं दिया गया, बल्कि "गुणातीत" लोगों को ही यह आदेश है। उनके लिए और आगे का मार्ग दर्शाया गया है कि वह सुख-दुःख के बराबर होने, मित्र-शत्रु में भेद न होने और सर्वत्र ब्रह्म को व्यापक देखने का अभ्यास करते-करते अब और आगे बढ़े और वर्णाश्रम के धर्मों और कर्तव्य कर्मों के बन्धन की परवाह छोड़कर सारा समय और अपनी सारी शक्ति ब्रह्म में तन्मय हो जाने (समाधि आदि) में लगा दे (उसके शरण में चला जाना यही है) तो परमात्मा उस पर कृपा करके उसको अपना लेंगे और पापों से छुड़ा देंगे ।**

इति “मंगलानन्द पुरी संन्यासिना" सम्पादिताआर्य भाषा सहिता

यव द्वीपान्तर्गत “बाली"द्वीपात्  प्राप्ता सप्तति श्लोक

युक्ता श्रीमत् (प्राचीन-महाभारत कालीन )

भगवदगीता समाप्ताः ..

॥ इत्योम् शान्तिः॥